# समान नागरिक संहिता

## एक तर्कसंगत तथा सकारात्मक अध्ययन

मौलाना वहीदुद्दीन खान

# समान नागरिक संहिता

## एक तर्कसंगत तथा सकारात्मक अध्ययन

मौलाना वहिदुद्दीन खान

# समान नागरिक संहिता

समान नागरिक संहिता का विचार स्वतंत्रता (1947) के पूर्व से ही भारत में चला आ रहा है। परंतु अब वह मुख्यतः भारतीय संविधान का मुद्दा बन गया है। क्योंकि स्वतंत्रता के पश्चात् देश का जो संविधान बना उसमें समान नागरिक संहिता के नाम से इसकी एक धारा विधवत् शामिल कर दी गई। यह संविधान का अनुच्छेद 44 है जो इसके मार्गदर्शक सिद्धांतों के अन्तर्गत दर्ज किया गया है।

## संविधान अनावश्यक विस्तार

संविधान एक उच्च स्तरीय दस्तावेज है। संविधान का उद्देश्य उन आधारभूत सिद्धांतों का निर्धारण है जिनकी भावनानुसार देश के प्रशासन (या किसी संगठन) को चलाया जा सके। स्वयं अपनी प्रकृति के अनुरुप संविधान को संक्षिप्त होना चाहिये। क्योंकि संविधान जितना विस्तृत होगा उतना ही उसमें परस्पर विरोध उत्पन्न होंगे तथा बार-बार उसमें परिवर्तन की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार संविधान का आदर समाप्त हो जायेगा। यहां तक कि विस्तार तथा जटिलता के कारण अंततः ऐसा होगा कि मात्र कुछ संविधान विशेषज्ञ ही उसको जानेंगे। सामान्य नागरिकों को उसकी कोई जानकारी या चि बाकी नहीं रहेगी।

यही कारण है कि अर्न्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संविधान विशेषज्ञ विस्कान्सन यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर डेविड फेलमेन (David Fellmen) से लेकर भारत के सबसे बड़े संविधान विशेषज्ञ श्री नानी पालकीवाला तक ने संक्षिप्त संविधान का समर्थन किया है।

वर्तमान समय में सभी विकसित राष्ट्रों के संविधान अत्यंत संक्षिप्त हैं। उदाहरण के लिये अविकसित राष्ट्र जार्जिया (Georgia) का संविधान पांच लाख (5,00,000) शब्दों का है,जबकि विकसित राष्ट्र अमेरिका का संविधान मात्र सात हजार शब्दों में सिमटा हुआ है। इसी प्रकार जापान का संविधान अत्यंत संक्षिप्त है, जिसको वर्तमान समय में विकसित राष्ट्रों की सूची में प्रथम स्थान प्राप्त है। (5/85-86)

भारत का संविधान संभवतः सारे देशों के संविधानों में सबसे अधिक लम्बा है। बारह विस्तृत अनुसूचियों के अतिरिक्त यह संविधान 395 धाराओं में फैला हुआ है। जबकि अधिकतर धाराओं की उपधाराएं भी हैं। इस विस्तृत "संविधान निर्माण" का अनुचित होना इसी से स्पष्ट है कि नवम्बर 1949 के बाद से अब तक इसमें लगभग 80 (अस्सी) संशोधन हो चुके हैं, तथा और अधिक संशोधनों की मांग जारी है। इन सबके बावजूद यह "सम्पूर्ण" संविधान देश को उन्नति के पथ पर आगे ले जाने में सफल न हो सका।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद भारत की संविधान सभा के अध्यक्ष (1946-49) थे। यह संविधान यद्यपि उन्हीं की अध्यक्षता में बना, तथा इसके पूर्ण होने के पश्चात् उन्होंने 26 नवम्बर 1949 को इस पर अपने हस्ताक्षर किये। तथापि वे विस्तृत संविधान बनाने के पक्ष में नहीं थे।

In his valedictory address to the constituent Assembly Dr. Rajendra Prasad said that everything cannot be written in the Constitution and hoped for the development of healthy conventions. But these have not been developed and everything has to be written in the Constitution.

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने संविधान सभा में अपना विदाई भाषण देते हुए कहा कि संविधान में हर बात नहीं लिखी जा सकती। उन्होंने आशा प्रकट की कि स्वस्थ परम्पराएं स्थापित की जायेंगी। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। इसके विपरीत यह धारणा बन गई कि हर बात को संविधान में लिख दिया जाये। (हिन्दुस्तान टाइम्स 24 मई 1995)

किसी संविधान का अनावश्यक विस्तार उसमें अनावश्यक धाराओं को शामिल करने का परिणाम होता है। भारतीय संविधान में इस प्रकार की अनावश्यक धाराऐं बड़ी संख्या में शामिल हैं। उन्हीं में से एक प्रशासनिक नीतियों के मार्गदर्शक सिद्धांतों (Directive principals) की धारा 44 है जो समान नागरिक संहिता से संबंधित है। इसमें कहा गया है कि शासन इस बात का प्रयास करेगा कि भारत के सभी नागरिकों के लिये एक समान नागरिक संहिता लागू की जा सके।

The State shall endeavour to secure for the citizens a uniform civil code throughout the territory of India.

संविधान की यह धारा उतनी ही असंवैधानिक है जितना यह कहना कि शासन इस बात का प्रयास करे कि देश के तमाम नागरिकों के लिये एक समान भोजन-सूचि

(Uniform menu) तैयार हो जाये। जिस प्रकार यह संभव नहीं है कि देश के सारे स्त्री-पुरुष और बूढ़े तथा बच्चे एक ही प्रकार का भोजन करें तथा एक ही प्रकार के वस्त्र धारण करें। इसी प्रकार यह भी निश्चित रुप से संभव नहीं है कि एक विशाल देश के सारे स्त्री-पुरुष एक ही ढंग से शादी-विवाह की रस्म अदा करें। चाहे इसके लिये विधिवत् कानून ही क्यों न बना दिया जाये।

संविधान का काम राष्ट्रीय नीतियों के आधारभूत नियमों को निर्धारित करना है, न कि निजी मामलों में लोगों की व्यक्तिगत पसंद-नापसंद को मिटाकर अनावश्यक रुप से एकरुपता लाने का प्रयास करना।

तथापि जब कोई बात लिख कर छाप दी जाती है तो बहुत सारे लोग इसको यथार्थ समझ लेते हैं। यही हाल संविधान की इस धारा का भी हुआ। अतएव बहुत से लोग इसकी दुहाई देकर मांग करते रहते हैं कि एक समान नागरिक संहिता का दौर लाने के लिये संसद एक कानून बनाये और उसको पूरे देश में लागू किया जाये।

## नेहरु रिपोर्ट

पूरे देश के लिये समान नागरिक संहिता बनाने का विचार काफी पहले से चला आ रहा है। संभवतः इसकी सर्वप्रथम अभिव्यक्ति 1928 में नेहरु रिपोर्ट के रूप में हुई। नेहरु रिपोर्ट वास्तव में स्वतंत्र भारत के संविधान का एक अग्रिम मसौदा था, जिसको प्रसिद्ध विधि विशेषज्ञ मोतीलाल नेहरु ने तैयार किया था। इस संवैधानिक मसौदे में स्वतंत्र भारत में शादी-ब्याह के मामलों को समान राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत लाने का प्रस्ताव किया गया था। उस समय भी मुस्लिम विद्वानों ने इसका कड़ा विरोध किया। इसके साथ ही तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने भी इसको स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इसमें भारत के लिये ओपनिवेशिक स्तर (Dominion status) की बात कही गई थी जो अंग्रेजों को स्वीकार नहीं थी।

इसके बाद दिसम्बर 1939 में इस पर विचार करने के लिये कांग्रेस का एक अधिवेशन लाहौर में बुलाया गया। इस अधिवेशन में इसके व्यावहारिक पक्षों पर विचार करने के पश्चात् नेहरु रिपोर्ट को रद्द कर दिया।

## उच्चतम न्यायालय का निर्णय

सन् 1985 से एक समान नागरिक संहिता के मुद्दे को एक नया संवैधानिक महत्व प्राप्त हो गया। जबकि उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों ने इसके पक्ष में अपनी राय देना शुरु कर दी।

इस मामले में अदालती बहस का आरम्भ उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायधीश श्री वाई.वी.चन्द्रचूड़ के निर्णय से होता है। सन् 1985 में उन्होंने "मोहम्मद एहमद- शाहबानों" प्रकरण में अपना सर्वविदित निर्णय सुनाया था। इस निर्णय में चर्चा के वास्तविक विषय की सीमा लांघते हुए उन्होंने यह कहने की भी जरुरत महसूस की कि संविधान की धारा 44 के अन्तर्गत कानून बनाना समय की मांग है,तथा यह कि समान नागरिक संहिता राष्ट्रीय एकता को लाने में सहायक होगी।

a common civil code will help the cause of national integration.

इसके पश्चात् सन् 1985 में ही उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश चिन्नप्पा रेड्डी ने एक मामले में विचार प्रकट करते हुए कहा कि यह एक और उदाहरण है जो इस बात को स्पष्ट करता है कि एक समान नागरिक संहिता हमारी तुरन्त तथा अनिवार्य आवश्यकता बन चुकी है।

The present case is yet another which focuses... on the immediate and compulsive need for a uniform civil code.

यही बात अधिक विस्तार से तथा जोर देकर उच्चतम न्यायालय की दो सदस्यों की खंडपीठ ने मई 1995 में अपने सर्वसम्मत निर्णय में कही है। इसमें सदस्य न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह तथा न्यायमूर्ति आर.एम.सहाय थे। इसमें कहा गया है कि संविधान की धारा 44 के अनुसार समान नागरिक संहिता को लागू करना राष्ट्रीय स्थिरता की ओर एक निर्णायक कदम है। इसका काई भी औचित्य नहीं है कि किसी भी कारण से देश में एक समान नागरिक संहिता को लागू करने में देरी की जाये।

to Introduce a uniform personal law (is) a decisive step towards national consolidation... There is no justification whatsoever in delaying indefinitely the introduction of a uniform personal law in the countery (p.22).

## संविधान का अनुच्छेद 44

यह सारी बातें संविधान के अनुच्छेद 44 के संदर्भ में कही जा रही हैं। यह धारा संविधान के चौथे भाग में है। यह भाग प्रशासनिक नीतियों के लिये मार्गदर्शक सिद्धांतों के रुप में संविधान में शामिल किया गया है। इसकी धारा 37 में यह स्पष्ट किया गया है कि इस भाग में जो धाराऐं दर्ज की गई हैं वे किसी भी न्यायालय द्वारा लागू नहीं की जा सकेंगी। इसका संबंध पूर्ण रुप से राज्य तथा प्रशासन से है।ऐसी स्थिति में उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों का बार-बार धारा 44 के संदर्भ में समान नागरिक संहिता के मुद्दे को छेड़ना एक ऐसे मामले में दखल देना है जिसका उनसे कोई संबंध नहीं। अतएव जनता दल ने इस निर्णय पर टिप्पणी करते हुए (द पायनियर 15 मई 1995) इसे "अपनी सीमा से आगे बढ़कर संसद की सीमा में प्रवेश करना" बताया।

It is a judicial trespass on Parliament's jurisdiction.

इसी पृष्ठभूमि में "द हिन्दुस्तान टाइम्स" (12 मई 1995) ने अपने संपादकीय में इस निर्णय पर टिप्पणी का आरंम्भ इस वाक्य से किया था कि - भारत के उच्चतम न्यायालय ने पिछले कुछ वर्षों में बार-बार यह रुझान दिखाया है कि वह ऐसे स्थानों में घुस पड़ती है जहां प्रवेश करने से फरिश्ते भी घबराते है।

India's Supreme Court in recent years has displayed a penchant for rushing into terrain that angels fear to tread.

स्वयं संविधान के अनुसार समान नागरिक संहिता को विधि का रुप देने का संबंध पूर्ण रुप से सरकार से है तथा सरकार का हाल यह है कि 1956 में तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु ने साफ तौर पर कहा था कि मैं नहीं समझता कि वह समय आ गया है कि मैं इसको पूर्णता तक पहुंचाऊं।

I do not think that at the present moment the time is ripe in India for me to try to push it through.

यही बात उसके बाद इंदिरा गांधी ने भी कही और अब वर्तमान प्रधानमंत्री पी.व्ही.नरसिम्हाराव ने भी यही बात कह दी है। (टाइम्स आफ इंडिया 28 जुलाई 1995 पृष्ठ 7) अब यह बड़ी अजीब बात है कि जिन लोगों को व्यावहारिक रुप से समान नागरिक संहिता लाना है वह तो इससे असंबद्धता प्रकट कर रहे हैं तथा जिन लोगों के

अधिकार क्षेत्र में सिरे से इसका मामला ही नहीं वे इसके पक्ष में जोशीले भाषण दे रहे हैं। इस प्रकार की बातें समय नष्ट करना मात्र है, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

## धार्मिक स्वतंत्रता एक अनिवार्य अधिकार

जो लोग संविधान की धारा 44 के संदर्भ में एक समान नागरिक संहिता की बात करते हैं। उन्होंने संभवतः इस पर बहुत कम ध्यान दिया है कि स्वयं संविधान की धारा 25 में इसका खंडन विद्यमान है। भारतीय संविधान की धारा 25 में भारत के प्रत्येक नागरिक को अंतरात्मा व धार्मिक कृत्यों तथा धर्म के प्रचार की पूरी स्वतंत्रता दी गई है। इसमें कहा गया है कि सारे व्यक्ति समान रुप से अंतरात्मा की स्वतंत्रता का अधिकार रखते हैं। उनको यह अधिकार है कि वे स्वतंत्र रुप से किसी धर्म को स्वीकार करें, उसपर चलें तथा उसका प्रचार करें।

All persons are equally entitled to freedom of conscience and the right freely to profess, practise and propagate religion.

धर्म का यह चुनाव व्यक्ति या समुदाय की स्वयं की मर्जी पर निर्भर होगा। इसीलिये धारा 25 की व्याख्या (Explanation I) में कहा गया है कि सिखों की धार्मिक स्वतंत्रता में उनका यह अधिकार शामिल है कि वे अपने विश्वास के अनुसार अपने साथ कृपाण (कटार) रखें। संविधान में "सांस्कृतिक अधिकार" के अन्तर्गत सामान्य रुप से यह कहा गया है कि भारतीय नागरिकों का कोई भी वर्ग जो अपनी अलग संस्कृति तथा भाषा रखता हो उसको यह अधिकार होगा कि वह अपनी संस्कृति तथा भाषा की सुरक्षा करे। (धारा 29)

इसके अतिरिक्त धार्मिक स्वतंत्रता की धारा जो संविधान में है वह संविधान के उस भाग में है जिसका संबंध नागरिकों के बुनियादी अधिकारों (Fundamental rights) से है। जबकि उपरोक्त धारा 44 संविधान में दिये हुए मार्गदर्शक सिद्धांतों के अन्तर्गत आती है, तथा स्वयं संविधान की धारा 37 के अनुसार उसके मार्गदर्शक सिद्धांतों की धाराएं उसके बुनियादी अधिकारों की धाराओं के अधीन है न कि उससे स्वतंत्र।

ऐसी स्थिति में संविधान की धारा 44 के संदर्भ में सरकार से यह मांग करना कि वह समान नागरिक संहिता को देश में कानून बनाकर लागू करे, स्वंय संविधान की मूल भावना के विरुद्ध है। जब तक देश में कोई ऐसा संप्रदाय विद्यमान है जो इस प्रकार के कानून बनाये जाने को अपने धर्म में अनावश्यक हस्तक्षेप मानता है, उस समय तक स्वयं संविधान के अनुसार ऐसा करना संभव नहीं। तथा यदि कोई संसद ऐसा

कानून बनाये और देश का कोई धार्मिक समुदाय उसके विरुद्ध न्यायालय में अपील करे तो न्यायालय जो संविधान का रक्षक है, वह निश्चित रुप से ऐसे कानून को रद्द कर देगा।

भारतीय संविधान में धार्मिक स्वतंत्रता की धारा कोई साधारण बात नहीं है। यह मानवाधिकार की उस घोषणा (Universal Declaration of Human Rights) के अन्तर्गत है जिसको संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1948 में जारी किया था तथा जिसका एक स्थायी सदस्य भारत भी है। इस घोषणा के आर्टिकल 18 में इस बात की जमानत दी गई है कि प्रत्येक व्यक्ति को धर्म की स्वतंत्रता होगी। इसमें धर्म बदलने की स्वतंत्रता तथा अपने मनोवांछित धर्म पर चलने की स्वतंत्रता भी शामिल है।

भारत ने इस अन्तराष्ट्रीय घोषणा पर एक राष्ट्र के रुप में अपने हस्ताक्षर किये हैं। इसी तरह धार्मिक स्वतंत्रता प्रत्येक भारतीय नागरिक का एक ऐसा अधिकार बन जाती है जिसको किसी भी स्थिति में छीना नहीं जा सकता।

## धर्म तथा व्यक्तिगत अधिनियम

उच्चतम न्यायालय की उपरोक्त दो सदस्यीय खंडपीठ के 31 पृष्ठों के निर्णय (मई 1985) में इस प्रकार के कानून निर्माण का औचित्य यह कहकर निकाला गया है कि विवाह व तलाक के मामले का संबंध धर्म से नहीं है बल्कि इसका संबंध देश के कानून से है न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह अपने निर्णय में लिखते हैं कि संविधान की धारा 44 इस विचार पर आधारित है कि सभ्य समाज में धर्म तथा व्यक्तिगत कानून के मध्य कोई अनिवार्य संबंध नहीं है उसकी धारा 25 धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देती है जबकि धारा 44 सामाजिक संबंधों तथा व्यक्तिगत कानून को धर्म से अलग कर रही है।

Article 44 is based on the concept that there is no necessary connection between religion and personal law in a civilised society. Article 25 guarantees religious freedom whereas Article 44 seeks to divest religion from social relations and personal law.

यह बात एकदम निराधार है। धर्म का संबंध सारे धार्मिक विद्धानों के अनुसार तीन चीजों से है। विश्वास, इबादत (धार्मिक कर्मकांड) तथा नैतिक मूल्य (Ethical Values), तथा नैतिक मूल्यों में निसंदेह यह बात सर्वप्रथम है कि स्त्री तथा पुरुष के मध्य उचित शारीरिक संबंधों का रुप क्या हो। विवाह का संबंध इसी नैतिक समस्या का हल है इसलिये वह निश्चित रुप से धर्म में शामिल है।

धर्म तथा पर्सनल लॉ का यह संबंध इतना अधिक स्पष्ट है कि स्वयं खंडपीठ के इसी निर्णय में इसकी स्वीकारोक्ति मौजूद है। अतएव पीठ के दूसरे सदस्य न्यायमूर्ति आर.एन.सिन्हा अपने अलग निर्णय में लिखते हैं कि शादी, उत्तराधिकार, तलाक, धर्म परिवर्तन अपनी प्रकृति तथा स्थिति में उतना ही धार्मिक है जितना कि धार्मिक विश्वास। अग्नि के आगे सात फेरे लेना या काजी के सामने स्वीकार की क्रिया भी उतना ही विश्वास तथा अंतरात्मा का विषय है जितना स्वंय इबादत या पूजा।

Marriage, inheritance, divorce, conversion are as much religious in nature and content as any other belief or faith. Going round the fire seven rounds or giving consent before Qazi are as much matter of faith and conscience as the worship itself.

वास्तविकता यह है कि किसी भी तर्क से विवाह के मामले को धर्म से पृथक नहीं किया जा सकता, तथा जब विवाह व तलाक का मामला धर्म का मामला है तो संविधान की धारा 25 के अनुसार किसी भी संसद या किसी भी संस्था को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी समुदाय विशेष के इस मान्य अधिकार को छीन ले तथा उसकी इच्छा के बिना उसके उपर ऐसा कानून लागू करे जो उपरोक्त धारा के अनुसार उसके धार्मिक मामले मैं हस्तक्षेप कहा जा सके।

## समान नागरिक संहिता तथा राष्ट्रीय एकता

कामन सिविल कोड का अभिप्राय क्या है? कोई भी व्यक्ति यह नहीं कहेगा कि केवल कामन कोड हेतु कामन कोड (Common code for the sake of common code) हमारा अभिप्राय है। फिर इसका असल मकसद क्या है। इसके सारे समर्थक एक स्वर में इसका एक ही लाभ बताते हैं, वह यह है इसके द्वारा लोगों में आपसी प्रगाढ़ता पैदा होगी। इस तरह वह सशक्त भारतीय राष्ट्र साकार हो जायेगा, जिसकी पचास साल से हमको प्रतीक्षा है।

मगर यह मात्र तुक बंदी की बात है। केवल शाब्दिक साम्य के आधार पर यह समझ लिया गया है कि कामन सिविल कोड से कामनफीलिंग उत्पन्न हो जायेगी। यद्यपि दोनों में कोई अनिवार्य संबंध नही है। सारे संबंधित तथ्य इस दृष्टकोण का खंडन करते हैं।

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह अपने निर्णय में लिखते हैं कि सरकार ने हिन्दुओं के परम्परागत कानून को कोड का रुप देने का प्रयास किया है। हिन्दू विवाह अधिनियम

1955, हिन्दू वर्ग अधिनियम (Hindu section Act) 1956, हिन्दू माइनोरिटी एंड गार्जियनशिप एक्ट 1956, हिन्दू एडाप्शन एंड मेन्टीनेन्स एक्ट 1956 बनाया जा चुका है। इन कानूनों ने परम्परागत हिन्दू कानून का स्थान ले लिया है जो कि भिन्न-भिन्न विचारधाराओं तथा धार्मिक ग्रंथों पर आधारित था इन आधुनिक कानूनों ने इन सबको एक यूनीफार्म कोड की हैसियत दे दी है। जब 80 प्रतिशत से ज्यादा नागरिक पहले ही से समान व्यक्तिगत कानून के अन्तर्गत लाये जा चुके हैं तो अब इसका कोई भी औचित्य नहीं है कि भारत के सभी नागरिकों के लिये समान नागरिक संहिता को लागू करने के कार्य को और अधिक स्थगित किया जाये। (पृष्ठ - 2)

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह आगे लिखते हैं कि आखिर सरकार को और कितना समय चाहिये कि वह भारतीय संविधान की धारा 44 के अंतर्गत दिये हुए निर्देशों का पालन करे। हिन्दुओं का परम्परागत कानून, हिन्दुओं का पर्सनल लॉ जिसका संबंध सम्पत्ति के बटवारे,उत्तराधिकार तथा शादी ब्याह से है।बहुत पहले 1955-56 में कानूनी कोड का रूप ले चुका। अब किसी भी प्रकार का कोई औचित्य बाकी नहीं रहा है कि देश में समान नागरिक संहिता को लागू करने में और अधिक देरी की जाये। हिन्दुओं का पर्सनल लॉ जिसका संबंध शादी-ब्याह,उत्तराधिकार इत्यादि से है वह सब इसी प्रकार सम्मानीय समझे जाते हैं जैसा मुसलमानों या इसाईयों के कानून, मगर हिन्दू और उनके साथ सिख और बौद्ध तथा जैन आदि संप्रदायों ने राष्ट्रीय एकता तथा दृढ़ता के लिये अपनी भावनाओं को भुला दिया।तथापि कुछ और धार्मिक संप्रदायों ने अभी ऐसा नहीं किया है, यद्यपि संविधान सारे भारत में एक ही समान नागरिक संहिता लागू करने पर बल देता है। (पृष्ठ 21-22)

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह के निर्णय के जिस अंश को हमने उपर उदधृत किया है, उसमें श्रीमान के अनुसार देश का बहुसंख्यक वर्ग (80 प्रतिशत से अधिक) इस समान पारिवारिक कानून के अंतर्गत व्यावहारिक रूप से लाया जा चुका है जिसके लिये वह संपूर्ण रूप में एक समान व्यक्तिगत कानून बनाने की जोरदार वकालत कर रहे हैं।फिर जब आबादी के इतने बड़े भाग में वांछित कानून व्यावहारिक रुप से आ चुका है तो उसके वह सकारात्मक परिणाम कहां है जो बताये जाते हैं।

हम देख रहे हैं कि आज भी हर सतह पर राष्ट्रीय एकता का अभाव है। लोगों में कोई राष्ट्रीय चरित्र नहीं।विधानसभा और संसद में अधिवेशन के दौरान ऐसे हंगामें होते हैं कि कार्यवाही को जारी रखना मुश्किल हो जाता है। ग्राम पंचायतों में पहले से भी अधिक झगड़े हो रहे हैं।अदालतों में आपसी मुकदमों की भरमार है।दो अलग-अलग संप्रदायों से भी ज्यादा एक ही संप्रदाय के लोगों के बीच टकराव हो रहा है।अधिकतर

राज्यों में क्षेत्रीय हंगामे जारी हैं। यहां तक कि कई राज्यों में अलगाव के हिसंक आंदोलन चलाये जा रहे हैं।सारे राजनीतिक दलों का सिविल कोड एक ही है। मगर इन दलों ने इतने बड़े पैमाने पर आपसी लड़ाई जारी कर रखी है कि देश की स्थिरता अत्यंत खतरे में पड़ गई है। इत्यादि।

इससे ज्ञात हुआ कि स्वंय सुप्रीम कोर्ट के उपरोक्त न्यायधीश द्वय के निर्णय के अनुसार असल समस्या कामन कोड के लागू करने की नहीं है, वरन् कॉमन कोड के लागू हो जाने के बावजूद परिणाम न निकलने की है। ऐसी स्थिति में हमें चाहिये कि हम दूसरे उपाय तलाश करें न कि असफल हो जाने वाले उपायों को व्यर्थ ही बारम्बार दोहराने में अपना समय नष्ट करें।

## आपसी फूट अंग्रेजों की देन

आज जिस "कॉमन फीलिंग" की बात की जा रही है वह इससे पहले शताब्दियों से हमारे देश में पूरी तरह मौजूद थी।देश के विभिन्न वर्ग मिल-जुलकर आपसी प्रेम के साथ जिंदगी गुजारते थे, यद्यपि इस जमाने में कॉमन कोड जैसी किसी चीज का कोई अस्तित्व नहीं था। हर धार्मिक समुदाय की सांस्कृतिक पहचान अलग थी तथा प्रत्येक अपनी-अपनी धार्मिक परंपराओं के अनुसार शादी-ब्याह की रस्में अदा करता था। फिर भी वह चीज पूरी तरह विद्यमान थी जिसको राष्ट्रीय एकता कहा जाता है।

भारतीय समाज के इस संतुलन को जिस चीज ने अस्त-व्यस्त किया वह कोई "असमान सिविल कोड" नहीं था बल्कि भूतपूर्व बृटिश सरकार की वह नीति थी जिसे भूतपूर्व लेफ्टिनेन्ट जनरल कोक (General coke) ने फारमूले को रूप देते हुए कहा था कि "फूट डालो और राज्य करो"

**Divide and rule**

इस अवांछित परिस्थिति की प्रारंभिक शुरुआत लार्ड एल्गिन (James Bruce Elgin) के काल में हुई जो 1862-63 में भारत का वाइसराय था। ब्रिटिश सरकार के सेक्रेट्री आफ स्टेट मि. वुड (Wood) ने लंदन से नई दिल्ली में वायसराय को पत्र लिखा कि—

We have maintained our power in India by playing off one part against the other and we must continue to do so. Do all you can, therefore, to prevent all having a common feeling.

हमने भारत में अपना साम्राज्य वहां के एक वर्ग को दूसरे वर्ग के विरुद्ध लड़वाकर बाकी रखा है। हमें ऐसा करते रहना चाहिये। इसलिये लोगों को समभाव से रोकने के लिये जो कुछ कर सकते हो करो। (द हिन्दुस्तान टाइम्स 30 मार्च 1995)

ब्रिटिश शासकों की यही सोची-समझी नीति थी जिसने भारत की बनी बनाई सारी राष्ट्रीयता को बिखेर दिया। उन्होंने सभी प्रकार के सरकारी साधनों का उपयोग कर आपसी नफरत का एक कृत्रिम जंगल उगा दिया। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के बाद भी यह आग न बुझाई जा सकी, तथा इसका सिलसिला आज तक जारी है। यही उसका मूल कारण है। इसके अतिरिक्त समान नागरिक संहिता के होने या न होने से इसका कोई संबंध नहीं है।

## समान कोड समानता का साधन नहीं

समान कोड का कोई संबंध समानता या एकता से नहीं। एक ही सिविल कोड को अपनाने वाले बार-बार आपस में लड़ते रहे हैं। उदाहरण के लिये प्राचीन भारत में कौरव तथा पांडव दो पारिवारिक संबंधी थे। दोनों का सिविल कोड एक था। इसके बावजूद दोनों में वह महायुद्ध हुआ जिसको महाभारत कहा जाता है। भारतीय जनता पार्टी ने घोषणा की है कि दिल्ली की सरकार पर कब्जा करने के लिये घातक तेवरों (Killer Instinct) के साथ महाभारत बरपा करेगी (टाइम्स आफ इंडिया 24 जुलाई 1995) इस नई महाभारत के दोनों पक्ष पुनः वही लोग हैं जिनका सिविल कोड बिल्कुल एक समान है।

प्रथम विश्वयुद्ध (1914-18) में एक ओर जर्मनी तथा इटली इत्यादि थे, और दूसरी तरफ ब्रिटेन, फांस इत्यादि। दोनों गिरोहों में घातक युद्ध हुआ यहां तक कि मृत तथा गंभीर रुप से घायल लोगों की संख्या 30 मिलियन तक पहुंच गई। यह दोनों युद्धरत पक्ष ईसाई थे।इनमें से प्रत्येक के यहां वही सिविल कोड प्रचलित था जो कि दूसरे के यहां प्रचलित था। मगर यह कानूनी एकरुपता दोनों को आपस में लड़ने से रोकने वाली सिद्ध नहीं हुई। इसी तरह दूसरे विश्व युद्ध (1939-1945) में एक पक्ष का नेता जर्मनी था तथा दूसरे पक्ष का नेता ब्रिटेन।दोनों की संस्कृति तथा सिविल कोड एक था।इसके बावजूद उन्होंने एक-दूसरे के विरुद्ध इतिहास का सबसे अधिक भयानक युद्ध किया। दोनों का एक समान सिविल कोड को मानना उन्हें आपसी युद्ध से रोकने वाला न बन सका।

भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को 1984 में कुछ लोगों ने मार डाला, जबकि कत्ल करने वाला व कत्ल होने वाला, दोनों का सिविल कोड एक था। पंजाब में अलगाववाद की खूनी लड़ाई जिन दो पक्षों के बीच जारी हुई वे दोनों एक ही सिविल कोड को मानने वाले थे। हर दिन अखबारों में पतियों और पत्नियों के बीच अत्याचार की घटनाएं छपती रहती हैं जबकि दोनों एक ही सिविल कोड से संबंध रखने वाले होते हैं। अदालतों में करोड़ों भारतीय एक-दूसरे के विरुद्ध कड़े आरोप लगाकर कानूनी लड़ाई लड़ रहे हैं।यद्यपि अधिकतर मामलों में दोनों पक्षों का सिविल कोड एक ही होता है इत्यादि।

वास्तविकता यह है कि  तथा एकता के लिये एक समान सिविल कोड का अलाभकारी होना आज ही ज्ञात तथा सिद्ध है कोई नया कानून बना कर पुनः उसका और एक परीक्षण करने की कोई आवश्यकता नहीं।

## देश के बुद्धिजीवियों की प्रतिक्रिया

सर्वोच्च न्यायालय की खंडपीठ का निर्णय (10 मई 1995) अखबारों में छपा तो देशवासियों तथा बुद्धिजीवियों की प्रतिक्रियाएं बड़ी संख्या में सामने आई। एक वर्ग ने इसका स्वागत किया तथा उसको इस तरह लिया जैसे कि यह देश की वर्तमान समस्याओं को कोई निश्चित् हल है।तथापि इनमें एक बड़ी संख्या ऐसे लोगों की भी थी जिन्होंने इससे सहमति प्रकट नहीं की और किसी एक या दूसरे कारण से इसे रद्द कर दिया दूसरे वर्ग के कुछ संदर्भ इस प्रकार है।

1. Politics of Uniform Civil Code
   by Partha S. Ghosh
   The Hindustan Time, New Delhi, May 22, 1995

2. Living with Religion
   by Kuldip Nayyar
   The Statesman, New Delhi, May 31, 1995

3. Uniform Civil Code: Judiciary Oversteps its Brief
   by H.M. Seervai
   The Times of India, New Delhi, July 5, 1995

4. Personal Laws: Uniformity no Essential
   by Balraj Puri
   Indian Express, New Delhi, July 6, 1995

5. Civil Code: The Constitutional Perspective
   by K.C. Markandan
   The Hindustan Times, New Delhi, June 19, 1995.

नमूने के तौर पर बलराज पुरी के उपरोक्त लेख के कुछ हिस्से का यहां उल्लेख किया जा रहा है। उन्होंने कॉमान सिविल कोड के विचार को पूरी तरह रद्द कर दिया है। उन्होंने लिखा है कि:-

सुप्रीम कोर्ट के सम्मानीय न्यायधीशों ने राष्ट्रीय एकता का जो विचार प्रस्तुत किया है तथा उसके समर्थन में जो तर्क दिये हैं उसपर मेरा एतराज बहुत बुनियादी है। मेरे विचार में श्रीमान न्यायधीश राष्ट्र निर्माता के कार्य में विपरीत रुप से प्रभावशील हुए हैं। भारतीय कौम के साझे चरित्र पर तथा मुसलमानों के मध्य एवं मुसलमानों और दसरे सम्प्रदायों विशेष रुप से हिन्दुओं के साथ बातचीत पर जो कि उसके पर्सनल लॉ के संशोधन के प्रश्न पर जारी था, यह कहकर कि मुस्लम पर्सनल लॉ में संशोधन उस समय नहीं हो सकता जब तक कि उसको समान सिविल कानून का हिस्सा न बना दिया जाये। श्रीमान न्यायधीश ने मुस्लिम स्त्रियों के मामले को मुसलमानों की अलग पहचान के आधीन कर दिया है तथा इस प्रकार उन्होंने एक अच्छे मकसद के साथ कठोर अन्याय किया है।

समानता तथा सुधार के मध्य तनिक भी कोई तार्किक संबंध नहीं है। प्रथम के विरुद्ध मामला उतना ही अनाक्रम्य है जितना द्वितीय के विरुद्ध। समान नागरिक संहिता राष्ट्रीय एकता तथा स्थिरता के विकास के लिये कोई निश्चित उपाय नहीं। जैसाकि न्यायाधीश महोदय सिद्ध करना चाहते है संविधान की स्टेट लिस्ट में 66 विषय हैं तथा कॉन्करेन्ट लिस्ट में 47 विषय है। जिनके मामले में राज्यों को अधिकार दिया गया है कि वे अलग-अलग कानून बना सकते है तथा इनमें एकरूपता आवश्यक नही है। यदि राज्यों की भौगोलिक तथा सांस्कृतिक अनेकता के आधार पर बनाये जाने वाले असमान कानून देश की एकता के लिये खतरा नहीं है तो अभौगोलिक प्रकार के धार्मिक समुदायों में असमानता से वे क्यों खतरा बन जायेंगे। यह दावा किया गया है कि कोई संप्रदाय

धर्म के आधार पर अपने लिये अलग पहचान की मांग नहीं कर सकता। मगर क्या हम भाषा के आधार पर अलग पहचान पर सहमत नहो हुऐ? तथा भाषा के आधार पर देश का पुनर्गठन नहीं किया? फिर माननीय न्यायाधीश क्यो अपवादस्वरूप केवल धार्मिक समुदायों को अलग पहचान का अधिकार देने से इनकार कर रहे है। यह एक तर्कहीन बात है। तथा सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से स्थापित तथ्यों के विरुद्ध है। क्या यह पहचान मात्र एक न्यायाधीश की घोषणा से समाप्त हो जायेगी। (इंडियन एक्सप्रेस 6 जुलाई 1995)

There is absolutely no logical connection between uniformity and reform. The case against the former is as unassailable as it is for the latter. Nor is uniform law imperative, as the judges argue, for the promotion of national unity and solidarity. There are a number of 66 entries in the State List and 47 in the Concurrent List of the Constitution on which States are empowered to make laws without any obligation to conform to uniformity. If diversity of laws, based on geographical and cultural diversities of the States, has not threatened the unity of the country would it be threatened only if the diversities are of non-territorial form as are religious communities?

Justice Kuldip Singh has proclaimed that no community could claim to remain a separate entity on the basis of religion. Have not we conceded separate entities based on languages and reorganised the country on a linguistic basis? Have not caste-based identities been recognised in the Mandal Principle and all identities, cultural, tribal, caste and religious acquired political legitimacy? Why does the honourable judge single out the claim of a religious community for a distinct identity? It defies logic and socially and politically the accepted reality. Can this identity disappear by a mere pronouncement of a judge?

# गोलवलकर के विचार

आर एस एस के भूतपूर्व सरसंघ चालक गुरु गोलवलकर ने 20 अगस्त 1972 को दिल्ली में दीनदयाल रिसर्च संस्थान का उद्घाटन किया। इस अवसर पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय एकता के लिये समान नागरिक संहिता कोई अनिवार्य चीज नहीं है। उनका भाषण "मदर लेंड" (21 अगस्त 1972) में छपा था। उसके बाद साप्ताहिक "आर्गेनाइजर" (26 अगस्त 1972) में इस विषय पर उनका एक साक्षात्कार प्रकाशित हुआ।यह रिपोर्ट अंग्रेजी में अगले पृष्ठों पर दी जा रही है।उन्होंने जो कुछ कहा उसका सारांश यह था:-

मैं नहीं समझता कि राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करने के लिये हमें एक समान सिविल कोड की आवश्यकता है। इस प्रकार की कानूनी समानता का राष्ट्रीय एकता से कोई संबंध नहीं। भारत सदैव विभिन्नताओं का देश रहा है। इसके बावजूद लम्बे समय से हम एक शक्तिशाली तथा संगठित राष्ट्र बने रहे। एकता के लिये हमें सामंजस्य की आवश्यकता है न कि एक रुपता की। मेरा एहसास है कि प्रकृति अधिक एकरूपता को पसंद नहीं करती। हमारे पास जीवन का बहुत लम्बा अनुभव है तथा हमारा अनुभव यह है कि अनेकता और एकता दोनों एक साथ रह सकते है। यह सही है कि भारतीय संविधान में एक धारा एक समान सिविल कोड के पक्ष में मौजूद है, परन्तु एक चीज मात्र इस कारण से पसंदीदा नहीं हो जाती कि वह किसी संविधान में लिखी हुई है। हर अवस्था में हमारा संविधान कुछ विदेशी संविधानों का संमिश्रण है।

कहा जाता है कि मुसलमान एक समान सिविल कोड के विरोधी हैं क्योंकि वे अपनी अलग पहचान बनाये रखना चाहते है, मगर कोई भी वर्ग या समूह जो अपनी अलग पहचान चाहता है उससे मेरा कोई झगड़ा नहीं, जब तक यह पहचान देश प्रेम की भावना को घटाने वाली न हो। असल समस्या यह है कि हिन्दुओं तथा मुसलमानों के मध्य बंधुत्व की भावना हो। मेरे विचार में मुसलमानों को अपनी जीवन शैली पर रहने का पूरा अधिकार है। परन्तु अवश्य ही उन्हें देश से तथा उसकी संस्कृति से प्रेम करना चाहिये। हिन्दुओं के लिये भी एक समान सिविल कोड बनाना अनावश्यक है आखिर हजारों साल से हिन्दू इस प्रकार के अन्तर के बावजूद मिलजुल कर रह रहे हैं।

किसी को यह बात दार्शनिकतापूर्ण लग सकती है। परंतु मैं समझता हूं कि एकरुपता राष्ट्रों के लिये मौत की निशानी है, प्रकृति एकरुपता को पसंद नहीं करती।मेरे विचार में प्रत्येक जीवन शैली की सुरक्षा की जानी चाहिये।परंतु अवश्य ही इन तमाम अनेकताओं को राष्ट्रीय एकता में सहायक होना चाहिये।

## Golwalkar on Uniform Civil Law

On August 20, 1972, Shri Guruji, Sarsanghachalak, RSS, inaugurated the Deendayal Research Institute in Delhi. On this occasion he said that a uniform civil code was not necessary for national unity. *The Motherland* of New Delhi carried the following report on August 21, 1970.

New Delhi, August.20- Shri M.S. Golwalkar, Sarsanghachalak of Rashtriya Swayamsevak Sangh, said here today that the present-day Indian politicians lacked original thinking on the problems of Indian society.

Shri Guruji was speaking at the inauguration of the Deendayal Research Institute and the celebration of Sri Aurobindo Centenary by the Institute. Shri R.R. Diwakar, President, Gandhi Peace Foundation, presided. A huge elite audience attended the function in front of the Institute building on Rani Jhansi Road, Jhandewala.

Citing the example of politicians' effort to solve problems without thinking, he referred to the question of uniform civil code for all in the country, and said that such uniformity was not necessary in itself; Indian culture permitted diversity in unity. 'The important thing is to infuse a spirit of intense patriotism and brotherhood among all citizens, Hindu and non- Hindu, and make them love this motherland according to their own religion.

In a special interview with *Organiser*, Shri Guruji reiterated his above view. Here is the substance of the conversation, as published in that paper's issue of August 26, 1972:

Q. You don't think that a uniform civil code is necessary for promoting the feeling of Nationalism?

A. I don't. This might surprise you or many others. But this is my opinion. I must speak the truth as I see it.

Q. Don't you think that uniformity within the nation would promote national unity?

A. Not necessarily. India has always had infinite variety. And yet, for long stretches of time, we were a very strong and united nation. For unity, we need harmony, not uniformity,.

Q. In the West the rise of nationalism has coincided with unification of laws and forging of other uniformities.

A. Don't forget that Europe is a very young continent with a very young civilisation. It did not exist yesterday and it may not be there tomorrow. My feeling is that nature abhors excessive uniformity. It is too early to say what these uniformities will do to Western civilisation in times to come. Apart form the here and the now, we must look back into the distant past and also look forward to the remote future. Many actions have long-delayed and indirect consequences. We in this country have millennia of experience. We have a tested way of life. And our experience is that variety and unity can, and do, go together.

Q. A Directive Principle of State Policy in our Constitution says that the State would strive for a uniform civil code.

A. That is all right. Not that I have any objection to a uniform civil code, but a thing does not become desirable just because it is in a Constitution. In any case our Constitution is a hotch- potch of some foreign constitutions. It has not been conceived and drafted in the light of Indian experience.

Q. Don't you think that Muslims are opposing a uniform civil code only because they want to maintain their separate identity?

A. I have no quarrel with any class, community or sect wanting to maintain its identity so long as that identity does not detract from its patriotic feeling. I have a feeling that some people want a uniform civil code because they think that the right to marry four wives is causing a disproportionate increase in the Muslim population. I am afraid this is a negative approach to the problem.

The real trouble is that there is no feeling of brotherliness between Hindus and Muslims. Even the secularists treat the Muslims as a thing apart. Of course their method is to flatter them for their bloc votes. Others also look upon them as a thing apart, but they would like to flatten out the Muslims by removing their separate

identity. Basically there is no difference between the flatterers and the flatteners. They both look upon Muslims as separate and incompatible.

My approach is entirely different. The Muslim is welcome to his way of life so long as he loves this country and its culture. I must say the politicians are responsible for spoiling the Muslims It was the Congress which revived the Muslim Leage in Kerala and thus caused the increase of Muslim communalism throughout the country.

Q. If we carry this argument backwards, even the codification of Hindu law would be considered unnecessary and undesirable.

A. I certainly consider the codification of Hindu law as altogether unnecessary for national unity and national integration. Throughout the ages we had countless codes-and we were not any the worse for them. Till recently Kerala had the matriarchal system. What was wrong with that? All law-givers. ancient and modern, are agreed the custom does, and must, prevail over the law.

"Custom is more effective than shastras", say the shastras. And custom is the local or group code. All societies recognise the validity of the local custom or code.

Q. If a uniform civil law is not necessary, what is uniform criminal law necessary?

A. There is a difference between the two. The civil law concerns mainly the individual and his family. The criminal law deals with the law and order and thousand other things It concerns not only the individual but also the society at large.

Q. Would it really be correct to allow our Muslim sisters to remain in purdah and be subjected to palygamy?

A. If your objection to Muslim practices is on humanitarian gorunds, then that becomes a valid objection. A reformist's attitude in these matters is alright. But a mechanical leveller' sattitude would not be correct. Let the Muslims evolve their old laws. I will be happy when they arrive at the conclusion that polygamy is not good for them, but I would not like to force my view on them.

Q. This seems to be a deep philosophical question.

A. It very much is. I think uniformity is the death-knell of nations. Nature abhors uniformity. I am all for the protection of various wsays of life. However, all this variety must supplement the unity of the nation and noit range itself against it.

*(Reproduced form Manthan, New Delhi, July 1986)*

## प्रकृति की शैली

ज़ौक देहलवी (1789-1854) उर्दू भाषा के प्रसिद्ध शायर हैं।उनका एक शैर यह है:-

**गुलहाय रंग-रंग से है जीनते चमन।**
**एज़ौक इस जहां को है ज़ैब इख्तिलाफ से**

यह प्रकृति का नियम है। आप किसी बगीचे में खड़े हों तो वहां हर पौधे तथा हर पेड़ का अंदाज अलग होगा। हर वृक्ष का फूल अलग अलग रंग में अपनी छटा बिखेर रहा होगा।पूरा बाग विभिन्नताओं का एक समूह दिखाई देगा। यहां तक कि चिड़ियां भी अलग-अलग स्वरों में अपने गीत सुना रही होंगी वह कह रही होंगी कि विधाता को ऐसा बाग पसंद है जहां कोयल की कूक हो तो बुलबुल के चहचहे भी हों।कोई चिड़िया एक ढंग की आवाज निकाले तो दूसरी चिड़िया किसी और ढंग से वातावरण में अपने गीत बिखेरे। हर चीज भिन्नता का एक नया नमूना हो।

यह भिन्नता सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में पाई जाती है। और इसी प्रकार मनुष्य में भी। जीव विज्ञान तथा मनोविज्ञान के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से पूणतः भिन्न होता है न केवल अंगूठे के निशान बल्कि प्रत्येक व्यक्ति की कोशिकाएं दूसरे व्यक्ति की कोशिकाओं से भिन्न होती है। एक व्यक्ति की आंख दूसरे व्यक्ति की आंख से नहीं मिलती। यह भिन्नता व अनेकता बाहरी सौन्दर्य के लिये नहीं है। इसके अंदर जबरदस्त हिकमत (बुद्धिमत्ता,युक्ति) छिपी है। वास्तव में इसी विभिन्नता तथा अनेकता से मानव की तमाम उन्नतियां आबद्ध हैं। इसी से नई-नई खोजें सामने आती हैं इसी से विचार संघर्ष होता है, जो अंततः वैचारिक विकास का कारण बनता है।इसी से आपसी चेलेंज सामने आते हैं जो व्यक्ति की मानसिक जागृति के लिये "एड़" का काम देती है।

किसी सभा में सारे सम्मिलितों की राय एक हो तो उससे कोई नया विचार नहीं निकलेगा। किसी औद्योगिक व्यवस्था में यदि सारे इंजीनियर एक ही सांचे में ढ़ले हों तो वे किसी नई तकनीक तक नहीं पहुंच सकते। किसी समाज में यदि सारे लेखक समरस हों तो वे कोई सृजानात्मक साहित्य उत्पन्न नहीं कर सकते। किसी देश के राजनीतिज्ञ यदि सबके सब एक ही सांचे में ढ़लकर निकले हों तो वे कोई बड़ा राजनीतिक कारनामा नहीं दिखा सकते।

विभिन्नता तथा अनेकता इस संसार का सामान्य नियम है। वह जीवन के प्रत्येक भाग में स्वंय अपने बल पर प्रचलित है। कोई मनुष्य उसे बदलने में समर्थ नहीं है।यहां तक कि यदि कोई ताकत के जोर पर इस व्यवस्था को बदले तो प्रकृति का तूफान इस कृत्रिम व्यवस्था को तोड़कर पुनः इसको अनेकता के सिद्धांत पर कायम कर देगा।

## व्यावहारिक नहीं

वास्तविकता यह है कि एक समान सिविल कोड एक अव्यावहारिक सपना है। इसका आंतरिक प्रमाण स्वंय भारतीय संविधान के अंदर मौजूद है। इसकी एक मिसाल वह है जो संविधान की धारा 44 तथा 371 "ए" की तुलना करने से सामने आती है।

जैसा कि ज्ञात है, संविधान की धारा 44 में निश्चित किया गया है कि देश के सभी नागरिकों के लिये बिना किसी अपवाद के एक ही यूनीफार्म सिविल कोड बनाया जाये। मगर इसी संविधान की धारा 371 "ए" (संशोधित) कहती है कि नागालेंड में नागाओं में जो धार्मिक तथा सामाजिक नियम प्रचलित हैं तथा उनके यहां जो विभिन्न पारंपरिक नियम हैं, उनके बारे में संसद कोई नियम नहीं बनायेगी। नागालेंड राज्य में वह यथावत् लागू रहेंगे। सिवाये इसके कि स्वयं नागालेंड की विधानसभा इनके बारे में एक प्रस्ताव के द्वारा ऐसा तय करे।

No Act of Parliament in respect of (Naga customary laws) shall apply to State of Nagaland unless the Legislative Assembly of Nagaland by a resolution so decides (371-A).

स्पष्ट है कि इन दोनों धाराओं में परस्पर विरोध है। यह विरोध इसीलिये है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने अभिमान स्वरूप "पूर्णसंविधान" बनाने के लिये मात्र कल्पनाओं के आधार पर इसमें विभिन्न बातें इकट्ठी कर दी जो यथार्थ के धरातल पर कभी इकट्ठी होने वाली नहीं थी। संभवतः इसीलिये संविधान सभा के एक वरिष्ठ सदस्य सर अलादि कृष्णास्वामी अय्यर ने संविधान सभा में बोलते हुए कहा था कि

भविष्य के विधि निर्माता, हो सकता है कि यूनीफार्म सिविल कोड बनाने का प्रयास करें तथा यह भी संभव है कि वे ऐसा कोई प्रयास ही न करे।

The future Legislatures may attempt a uniform civil code or they may not. (Sir Alladi Krishnaswami Iyer)

## कानून की सीमितता

कानून कोई असीमित चीज नहीं है। दूसरी सारी मानव निर्मित चीजें की तरह मानव निर्मित संविधान भी एक सीमित चीज है। एक सीमा के पश्चात् मानव समाज पर इसकी पकड़ समाप्त हो जाती है।

1975 में इलाहाबाद हाइकोर्ट ने एक निर्णय सुनाया।इसमें इंदिरा गांधी के चुनाव को न केवल रद्द किया गया था बल्कि इंदिरा गांधी को छः वर्ष के लिये चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य ठहराया गया था।मगर इसके बाद क्या हुआ? इंदिरा गांधी ने इमरजेंसी की घोषणा करके और अधिक समय के लिये दिल्ली की सरकार पर कब्जा कर लिया।

1986 में उत्तरप्रदेश की एक अदालत ने अपने निर्णय के अंतर्गत बाबरी मस्जिद का बंद दरवाजा खुलवाया ताकि हिन्दू आसानी के साथ इसके अंदर पूजा की रस्म अदा कर सकें। प्रकट में इसका उद्देश्य हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच सद्भावनापूर्ण संबंध स्थापित करना था। मगर इसका व्यावहारिक परिणाम यह हुआ कि उसके बाद ऐसा तूफान उठा कि हिन्दू-मुस्लिम संबंध अंतिम सीमा तक बिगड़ गये और भारत राजनीतिक तथा आर्थिक विनाश की कगार पहुंच गया।

शाह बानो प्रकरण में 1985 में उच्चतम न्यायालय ने एक फैसला दिया। बजाहिर इसका उद्देश्य स्त्रियों के साथ न्याय करना था मगर व्यावहारिक परिणाम यह हुआ कि राजीव गांधी सरकार ने एक कानून बनाकर उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय को रद्द कर दिया।दूसरी तरफ भारतीय जनता पार्टी ने इस मामले को भरपूर ढंग से अपने राजनीतिक लाभ के लिये इस्तेमाल किया। यहां तक कि भारतीय संसद में इसके सदस्यों की संख्या दो से बढ़कर 119 तक पहुंच गई और कई राज्यों में उनकी सरकार बन गई।

कानून की सीमितता इससे भी सिद्ध होती है कि हिन्दू कोड बिल 1955 में यद्यपि किसी हिन्दू के लिये केवल एक ही विवाह की अनुमति रखी गई है मगर 1961 की जनगणना की रिपार्ट के अनुसार एक से अधिक पत्नी रखने की दर हिन्दुओं के अंदर मुसलमानों से अधिक है:-

According to the Indian census report of 1961, the percentage of Hindus having more than one wife was more than that of the Muslims.

अंग्रेजों ने भारत में अपने दो सौ वर्ष के शासनकाल में केवल पांच सौ कानून बनाये। हमारे नेताओं को देश में 1947 में सत्ता प्राप्त हुई तो उन्होंनें 45 वर्ष के काल में पांच हजार से अधिक कानून बना डाले। मगर संशोधनों की अधिकता केवल उल्टे परिणाम देने वाली सिद्ध हुई। उसके बाद देश में झगड़े बहुत बढ़ गये, भ्रष्टाचार में अत्यधिक वृद्धि हो गई। न्याय प्राप्त करना अत्यंत कठिन कार्य बन गया। स्त्रियों की स्थिति हमेशा से ज्यादा शोचनीय हो गई। यह परिस्थितियां समाज सुधार के लिये नये उपाय खोजने की मांग करती हैं न कि और अधिक कानून बनाने की।

## धर्म परिवर्तन की समस्या

उच्चतम न्यायालय की डिवीजन बेंच के सामने जो याचिका थी उसका कोई सीध संबंध यूनीफार्म सिविल कोड से नहीं था। यह याचिका दरअसल चार हिन्दू स्त्रियों की ओर से स्त्रियों के एक संगठन कल्याणी ने दायर की थी। इस संगठन की अध्यक्षा श्रीमती सरला मुदगल हैं। इन चार हिन्दू स्त्रियों ने कहा था कि हमारे पतियों ने इस्लाम कुबूंल करके दूसरा विवाह कर लिया है, जबकि उन्होंने हमें विधिवत् तलाक नहीं दी।इनका इस्लाम कुबूल करना केवल इसलिये था कि वे इस्लाम के विवाह संबंधी कानून का लाभ लेकर अपने लिये दूसरी पत्नी प्राप्त कर सकें। इसलिये अदालत उनके दूसरे विवाह को रद् करके हमारी सहायता करे।

अदालत ने उपरोक्त याचिका को स्वीकार करते हुये चारों हिन्दुओं के दूसरे विवाह को रद् कर दिया, तथा उनको उनकी पहली पत्नी की तरफ वापस लौटा दिया। यंह निर्णय देते हुये न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह लिखते है:-

जब तक हम वास्तविक लक्ष्य तक न पहुंचे, अर्थात् भारत के तमाम नागरिकों के लिये एक समान नागरिक संहिता, उस समय तक यहां हिन्दू पतियों के लिये एक खुला प्रोत्साहन (Inducement) बाकी रहेगा,जो कि दूसरी शादी करना चाहते हों। ज़बकि उनकी पहली पत्नी अभी मौजूद हो। ऐसा हिन्दू अपने मुस्लिम होने की घोषणा करके दूसरी शादी कर लेगा।क्योंकि हिन्दुओं के लिये "एक पत्नी कानून" है तथा मुस्लिम कानून चार शादियों तक की अनुमति देता है, कोई दुराचारी पति ऐसा कर

सकता है कि वह इस्लाम कुबूल करले ताकि हिन्दू धर्म के नियमों से बच सके तथा दूसरी शादी के बावजूद फौजदारी कानून की पकड मे न आये। (पृष्ठ 5)

इसी दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए द हिन्दुस्तान टाइम्स 21 जून 1995 में लेटर्स के कॉलम में श्री चमनलाल वर्मा ने लिखा था कि एक समान सिविल कोड की आवश्यकता इसलिये है कि उन लोगों को धर्म में दुरुपयोग से रोका जा सके जो एक कानून की धाराओं से बचने के लिये दूसरे कानून की धाराओं का सहारा लेते हैं।

A uniform civil code is required to prevent the misuse of religion to evade the provisions of one law to take advantage of those of another.

नया कानून बनाना किसी भी स्तर पर पिछले कानून के दुरुपयोग के खिलाफ चेक नहीं हैं। कानून के गलत इस्तेमाल का अवसर हर हाल में बाकी रहता है।

करों की चोरी को रोकने के लिये असंख्य नियम तथा कानून बने हुए हैं इसके बावजूद करों की चोरी का सिलसिला हिमालय के स्तर पर जारी है।फिर जब किसी भी कानून में उसके दुरुपयोग को रोकना संभव न हो सका तो यूनिफार्म सिविल कोड में किस प्रकार ऐसा संभव हो जायेगा।

दूसरी बात यह कि यूनीफार्म सिविल कानून को लागू किये बिना यदि ऐसे हिन्दुओं के लिये कोई कानूनी चेक नहीं है तो उच्चतम न्यायालय के योग्य न्यायाधीशों के लिये यह कैसे संभव हुआ कि वे ऐसे गलत हिन्दुओं के लिये सजा का निर्णय सुनायें और उनके दूसरे विवाह को असंवेधानिक करार दे दें।

उच्चतम न्यायालय के निर्णय को देखने से मालूम होता है कि न्यायाधीश महोदयों ने अपना उद्देश्य भारतीय दंड संहिता के द्धारा प्राप्त किया। इस प्रकार अदालत के स्वयं अपने उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि यहां वास्तव में ऐसे निरोधक कानून मॉजूद हैं तथा दुराचारी हिन्दुओं के लिये यहां कोई प्रौत्साहन नहीं पाया जाता, यहां तक कि वर्तमान कानूनों के अंतर्गत भी नहीं फिर ऐसे दुराचारी लोगों को दुराचार से रोकने के लिये किसी नये सिविल कानून की क्या आवश्यकता है?

The Court's own ruling shows that no such inducement is available to an "errant Hindu" even under existing law. You do not need a civil code to deter him.

## धारा 44 निष्कासन योग्य

उपर मैंने जो विश्लेषण किया है तथा जो तर्क इकट्ठा किये है इसके बाद दो और दो चार की तरह यह बात सिद्ध हो जाती है कि भारतीय संविधान की धारा 44 की कोई भी संवैधानिक, नैतिक या सामाजिक सार्थकता नहीं है। वह कुछ मस्तिष्कों का काल्पनिक विचार मात्र था। अब इसका एकमात्र अंत यह होना चाहिये कि उसको संविधान से निष्कासित कर दिया जाये, ठीक उसी तरह जिस तरह शरीर की फालतू आंत (Appendix) का आपरेशन करके उसे निकाल दिया जाता है।

इस प्रकार की संवैधानिक चीर-फाड़ कोई नई चीज नहीं है। भारतीय संविधान में बार-बार ऐसे संशोधन किये जा चुके हैं। उदाहरण के लिये प्रारंभिक संविधान में व्यक्तिगत संपत्ति को पूर्ण रुप से सम्मानीय बताया गया था तथा सरकार को संवैधानिक रुप से यह अधिकार प्राप्त नहीं था कि वह किसी की वैधानिक संपत्ति को उससे छीन ले। मगर 1955 में संविधान में चौथा संशोधन प्रस्ताव (Fourth Amendment act.) स्वीकार किया गया जिसके अनुसार राज्य को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वह किसी भी व्यक्ति की निजी संपत्ति को बलपूर्वक अपने कब्जे में ले ले।इस प्रस्ताव के अनुसार संपत्ति के स्वामी को इस अधिकार से भी वंचित कर दिया गया कि सरकारी मुआवजा यदि उसको बाजार की दर से कम मालूम हो तो वह अदालत में उसके खिलाफ दावा कर सके।

इसी प्रकार प्रारंभिक संविधान में भूतपूर्व राजाओं को प्रीवीपर्स (निजी व्यय का धन) का अधिकार दिया गया था।मगर 1971 में संविधान में 26 वां संशोधन किया गया जिसके अनुसार इस धारा को समाप्त कर दिया गया तथा प्रवीपर्स के विषय में उनको दिये हुए सारे संवैधानिक अधिकारों को एकदम समाप्त कर दिया गया इत्यादि।

इन दृष्टांतों के प्रकाश में यह बात किसी भी स्थिति में अनोखी नहीं है कि एक और संशोधन के द्वारा भारतीय संविधान की धारा 44 को पूर्ण रूप से निष्कासित कर दिया जाये। उसका कुछ भी नुकसान नही होगा। परन्तु अवश्य ही हमारा संविधान एक ऐसे बोझ से हल्का हो जायेगा जो अनावश्यक रूप से उसके ऊपर लाद दिया गया है।

## यूनीकल्चर या मल्टी कल्चर

भारत में पिछले सौ वर्षों में दो विभिन्न राजनीतिक गिरोह मौजूद रहे हैं। और आज भी वे अलग-अलग नामों के साथ मौजूद हैं।एक वह जो धर्मनिरपेक्ष आदर्शवाद

पर देश का निर्माण करना चाहता है तथा दूसरा वह जो हिन्दू आदर्शवाद पर भारतीय समाज को ढ़ालना चाहता है दोनों के दृष्टिकोण एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।मगर अजीब बात है कि दोनों इस बात पर एकमत हैं कि भारत के तमाम लोगों के लिये एक समान सिविल कोड बनाया जाना चाहिये।

लेकिन यदि निष्पक्ष रुप से देखा जाये तो यूनीफार्म सिविल कोड दोनों ही के दृष्टिकोणों के विरुद्ध है। यदि वह अपने दृष्टिकोण में निश्छल हों तो उन्हें इस प्रकार के विचार का समर्थन कदापि नहीं करना चाहिये।

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है, धर्म के मामले में राज्य का दखल न देने की नीति अपनाना। लोगों को अपने विश्वास व धर्म की स्वतंत्रता देते हुए केवल साझे सांसारिक मामलों का प्रबंध तथा व्यवस्था करना।यही धर्म- निरपेक्षता का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सर्वसम्मत अर्थ है तथा इसी अर्थ के अनुरूप भारतीय संविधान का गठन किया गया है।

कुछ लोग धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या इस प्रकार करते हैं जैसे कि वह स्वयं एक धर्म है तथा तमाम प्रचलित धर्मों को समाप्त करके निजी दायरे से लेकर सामाजिक दायरे तक जीवन के तमाम पहलुओं को अपने दायरे में ले लेना चाहता है। मगर यह अतिवादिता है। इस प्रकार के अतिवादी लोग हर धर्म तथा हर व्यवस्था में होते हैं। अतएव स्वयं इस्लाम में ऐसे लोग मौजूद हैं जो इस्लाम की ऐसी व्याख्या करते हैं जिसमें इस्लाम राजनीति और युद्ध का धर्म बन जाता है मगर यह अति तथा अत्याचार है, वह इस्लाम का सही प्रतिनिधित्व नहीं।

यह एक वास्तविकता है कि धर्मनिरपेक्षता तथा समान नागरिक संहिता दोनों एक-दूसरे के विपरीत हैं। भारत का धर्मनिरपेक्ष वर्ग यदि सचमुच धर्मनिरपेक्ष है तो उसको समान नागरिक संहिता की बात नहीं करना चाहिये। क्योंकि निजी दायरे में धर्म की स्वतंत्रता धर्मनिरपेक्षता का आधारभूत सिद्धांत है।

दूसरा गिरोह वह है जो हिन्दू आदर्शवाद की बुनियाद पर खड़ा होना चाहता है। इस गिरोह को जानना चाहिये कि यदि वह हिन्दू आदर्शवाद में विश्वास रखता है तो यह स्वयं उसके अपने विश्वास के विरुद्ध होगा कि वह हर वर्ग और हर समूह को एक ही सिविल कोड के अंतर्गत लाने का प्रयास करे।

हिन्दू आदर्शवाद का बुनियादी सिद्धांत सर्वधर्म समभाव है अर्थात् सब धर्म सच्चे हैं। हिन्दूवाद की बुनियादी विशेषता यह है कि वह अनेकता में एकता को मानता

है। उसके अनुसार वास्तविकता के बाहरी रुप अलग-अलग होते हैं आंतरिक रुप से यथार्थ एक होता है। अतएव हिन्दू धर्म का विश्वास है अनेकता में एकता को देखना।

सिविल कोड या किसी भी कोड का संबंध बाहरी रुप से है न कि आंतरिक भावना से ऐसी स्थिति में यह हिन्दू दृष्टिकोण के विरुद्ध होगा कि विभिन्न वर्गों के पर्सनल लॉ को समाप्त करके सबके लिये मात्र एक कोड जारी करने का प्रयास किया जाये।

विश्व के सभी विकसित देशों (उदाहरण के लिये ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस इत्यादि) में वहुसांस्कृतिक राष्ट्र का सिद्धांत प्रचलित है। सिंगापुर जैसे छोटे देश से लेकर अमेरिका जैसे विशाल देश तक हर जगह इसी सिद्धांत को अपना कर उन्नति हो रही है। सोवियत संघ संभवतः एकमात्र देश है जहां समसांस्कृतिक राष्ट्र बनाने का प्रयास किया गया। इसके लिये हर प्रकार की सरकारी शक्तियों का उपयोग किया गया। मगर समसांस्कृतिक राष्ट्र तो नहीं बना परंतु स्वंय सोवियत संघ टूटकर समाप्त हो गया। विश्व इतिहास का यह अनुभव हमारी आंखें खोलने के लिये काफी है।

वास्तविकता यह है कि इस मामले में समानता का संबंध इतिहास से है न कि कानून से।यदि किसी समाज में ऐतिहासिक प्रक्रिया के द्वारा समान संस्कृति आ जाये तो वहां समान कोड भी वन जायेग। इससे पहले ऐसा होना संभव नहीं।

## जनसंख्या वृद्धि का हौवा

असंख्य वरिष्ठ नागरिकों ने यह बात कही है कि शादी-ब्याह का मामला अत्यंत निजी मामला है। यदि कोई समाज चाहता है कि इस निजी मामले में वह अपने पारंपरिक तरीके पर बना रहे तो उसमें दूसरे समाज वालों को आपत्ति करने की क्या आवश्यकता है? इस स्पष्ट निरर्थकता के बावजूद कुछ अतिवादी राजनैतिक तत्व समान नागरिक संहिता लाने के लिये इतना शोर कर रहे हैं। यहां तक कि उन्होंने घोषणा कर दी है कि आने वाले लोकसभा चुनाव में उनका असल चुनावी मुद्दा,समान नागरिक संहिता का मसला होगा। (द हिन्दुस्तान टाइम्स 17 जुलाई 1995) जवकि निश्चित रुप से वे यह भी जानते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में समान नागरिक संहिता बनाने की व्यावहारिक दृष्टि से कोई संभावना नहीं। इस जोश का कारण स्वयं समान नागरिक संहिता का मामला नहीं है, बल्कि इसके नाम पर राजनीतिक लाभ लेने का मामला है। यह तत्व अत्यंत सोची समझी योजना के तहत यह मिथ्या प्रचार कर रहे हैं कि भारत में मुसलमानों की जनसंख्या तेजी से वढ़ रही है, तथा अगली शताव्दी के पूर्वार्ध में

यह घटना होने वाली है कि मुसलमान यहां बहुसंख्यक हो जायेगे तथा हिन्दू स्वयं अपने देश में अल्पसंख्यक होकर रह जायेंगे।

इस निराधार प्रचार के लिये उन्होंने एक भ्रामक दृष्टिकोण रचा है। वे बहुसंख्यक वर्ग की जनता से कहते हैं कि देखो स्वतंत्रता के बाद बनने वाली सरकार ने हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के द्धारा हिन्दुओं को तो कानूनी तौर पर बाध्य कर दिया कि वे केवल एक ही पत्नी रख सकते हैं, परन्तु मुसलमानों का जो पर्सनल लॉ एक्ट है (1860) उसके अन्तर्गत प्रत्येक मुसलमान को अधिकार प्राप्त है कि वह चार पत्नियां रखे। हिन्दू के उपर प्रतिबंध लगा है, मगर मुसलमान के उपर कोई प्रतिबंध नहीं।इस अंतर का परिणाम यह है कि हिन्दू के मुकाबले में मुसलमान चार गुने अधिक बच्चे पैदा कर सकता है। इस देश में हिन्दुओं की आबादी 1-2-3-4 की रफ्तार से बढ़ेगी तो मुसलमानों की संख्या 1-4-8-16 की रफ्तार से बढ़ती चली जायेगी।अपने राजनीतिक विरोधी की इस प्रकार भयानक तस्वीर दिखा कर यह लोग हिन्दुओं में अपना वोट बैंक बना रहे हैं। वे हिन्दू जनता से कह रह हैं कि इस हिन्दू विरोधी सरकार के खिलाफ वोट देकर उसको बाहर फैंक दो।

Throw out this anti-Hindu government.

यह प्रचार निसंदेह अंतिम सीमा तक बेबुनियाद है। मुसलमान आमतौर पर एक ही शादी करते हैं मेरी उम्र तिहत्तर (73) वर्ष हो चुकी है।मगर इस पूरी अवधि में मेरी जानकारी में कोई एक भी भारतीय मुसलमान नहीं आया जिसने चार विवाह कर रखे हों।यहां तक कि ऐसा करना संभव भी नहीं क्योंकि तमाम मुसलमान चार शादियां उसी स्थिति में कर सकते हैं जबकि उनके यहां पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या चार गुना अधिक हो, या उनके पास कोई ऐसा कारखाना हो जहां वे अधिक स्त्रियां पैदा कर सकें। मगर वर्तमान मुस्लिम समाज में न तो स्त्रियां अधिक है और न ही मुसलमानों के पास कोई स्त्री निर्माण का कारखाना है। ऐसी परिस्थिति में उनके लिये किस प्रकार संभव होगा कि उनमें से हर व्यक्ति चार-चार पत्नियां रखे।श्री बलराज पुरी का एक परिच्छेद इस सिलसिले में उल्लेख करने योग्य है।

"इस आशंका का पहला मुकदमा कि बहुपत्निवाद के पक्ष में कानूनी धारा इसके क्रियान्वयन तक भी पहुंचायेगी, गणनात्मक अध्ययन से सिद्ध नहीं होता। स्त्री की स्थिति के बारे में नेशनल कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार बहुपत्निवाद वास्तव में दूसरे सम्प्रदायों के मुकाबले में मुसलमानों के अंदर कम है। उसका दूसरा मुकदमा कि बहुपत्निवाद मुसलमानों की जनसंख्या को तेजी से बढ़ाएगा, तार्किक रूप से भ्रामक है। संतान उत्पन्न

करने योग्य स्त्रियों की संख्या क्योंकि सदैव समान रहती है, यदि कुछ पुरुष एक से अधिक शादियां करे तो बहुत से पुरुषों को पत्नियां ही नहीं मिलेंगी। किसी संप्रदाय में अविवाहित पुरुषों की बड़ी संख्या किसी भी तरह उस समुदाय की संतानोत्पादक क्षमता में वृद्धि नहीं करती स्पष्ट रुप से चार व्यक्ति चार पत्नियों के साथ अधिक बच्चे पैदा करेंगे, इसकी तुलना में कि एक ही पुरुष की चार पत्नियां हों। इस प्रकार वहुपत्निवाद का तरीका जनसंख्या में वृद्धि की दर को घटाने वाला है न कि उसको बढ़ाने वाला। (इंडियन एक्सप्रेस 6 जुलाई 1995)

लगभग निश्चित है कि उपरोक्त अतिवादी राजनीतिक तत्व अगले चुनाव में हिन्दू मतदाताओं से कहेंगे कि देखो संविधान की धारा तथा उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बावजूद मुसलमान एक समान नागरिक संहिता बनाने के लिये राजी नहीं हैं। वे ऐसा कानून बनाने के विरोधी इसलिये हैं कि उसके बाद उन्हें चार शादियां करने की अनुमति नही रहेगी और इस प्रकार वे अपनी आवादी बढ़ाने तथा हिन्दुओं को अल्पसंख्यकों में परिवर्तित करने के बारे में अपनी योजना को सफल नहीं कर सकेंगे। इसलिये हमें वोट देकर सत्ता तक पहुंचाओ ताकि हम इस खतरे का निवारण कर सकें। मगर इस कुप्रचार का बेबुनियाद होना ही इसके लिये काफी है कि खुदा की दुनिया में वह सफल न हो। देश का सबसे बड़ा अखबार टाइम्स आफ इंडिया अपने पहले पृष्ठ पर हर दिन प्रकृति के इस नियम की घोषणा करता है कि "सत्यमेव जयते" (Let Truth Prevail)

## समानता नहीं सामंजस्य

1954 में भारतीय संसद ने स्पेशल मेरिज एक्ट स्वीकार किया था। इसके अनुसार स्त्री तथा पुरुष किसी रस्म की अदायगी के बिना विशेष अदालत में जाते हैं तथा एक मजिस्ट्रेट के सामने वचन देकर एक-दूसरे के कानूनी पति-पत्नि बन जाते हैं। समान नागरिक संहिता यदि धर्मनिरपेक्ष सिद्धांत पर बनाई जाये तो वह वर्तमान स्पेशल मेरिज एक्ट का विस्तार होगा। मैंने दिल्ली में खोज की कि यहां कितने लोग हैं जिन्होंने उपरोक्त अधिनियम के अंतर्गत अपना विवाह किया है। काफी तलाश के बाद मुझे केवल दो व्यक्ति मिले एक हिन्दू तथा एक मुसलमान। यह दोनों किसी धार्मिक रीति के बिना साधारण तरीके से कोर्ट में गये तथा वहां अपना विवाह रजिस्टर्ड कर लिया। मगर कुछ ही वर्षों के बाद दोनों विवाह टूट गये। अब पति-पत्नि दोनों ही अलग-अलग रहते हैं। मैंने और अधिक जांच की तो मालूम हुआ कि इस अलगाव का कारण "अहं"

था। दोनों में अक्सर छोटी-छोटी बातों पर तकरार हो जाती। यह तकरार बढ़ते-बढ़ते स्थाई अलगाव तक पहुचं गई।

स्त्री-पुरुष में समानता का आधुनिक दृष्टिकोण कागज पर बहुत अच्छा लगता है, परंतु जीवन में सबसे अधिक जिस बात का महत्व है वह परस्पर सामंजस्य है न कि समानता। समानता का विचार अधिकार मांगने की प्रवृत्ति बनाता है तथा सामंजस्य का विचार कर्तव्य के निर्वाह था। यही कारण है कि समानता का दृष्टिकोण रखने वाले स्त्री-पुरुष अक्सर लड़कर एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं तथा एडजस्टमेंट का विचार रखने वाले सफल गृहस्थ का निर्माण करते हैं।

मैंने जापान के बारे में एक पुस्तक पढ़ी। उसमें बताया गया था कि जापानी स्त्री तथा पुरुष का स्वभाव यह होता है कि मैं किसी के आधीन हूं (I am under some one) अपने इस स्वभाव के कारण जापानी व्यक्ति सदैव दूसरे पक्ष से सामंजस्य स्थापित करने को तैयार रहता है। कहा जाता है कि अमरिकी स्त्री सबसे अधिक बुरी पत्नी है तथ जापानी स्त्री सबसे अच्छी पत्नी।उसका रहस्य यही है। अमरीकी स्त्री के मस्तिष्क में सबसे अधिक जो विचार छाया रहता है वह समानता का विचार है। इसके विपरीत जापानी स्त्री समानता तथा असमानता की बहस से उपर उठकर सिर्फ यह भावना लिये होती है कि मुझे अनुकूलन के सिद्धांत पर जिंदगी गुजारना है। इसीलिये गृहस्थ जीवन में अमरीकी स्त्री असफल रहती है तथा जापानी स्त्री सफल। अच्छा परिवार बनाने के लिये हमें सबसे अधिक आपसी सामंजस्य पर बल देना है न कि पाश्चात्य विचारों के अनुसार समानता पर।

## हिन्दू जातियां की रीति

स्वयं हिन्दुओं में शादी ब्याह का कोई एक निश्चित तरीका नहीं है। हिन्दुओं में सेकड़ों की संख्या में विभिन्न संप्रदाय हैं। तथा हर संप्रदाय अपनी-अपनी पारिवारिक या क्षेत्रीय रीति के अनुसार विवाह की रस्म अदा करता है।उदाहरण के लिये क्रिकेट के प्रसिद्ध खिलाड़ी सचिन तेंदुलकर ने 25 मई 1995 को बम्बई में अंजली मेहता से विवाह किया तो अखबारी रिपार्ट के अनुसार उनके विवाह का समारोह महाराष्ट्र के पारंपरिक तरीके से किया गया। (पायनियर 26 मई 1995)

आज भी लगभग तमाम हिन्दू अपनी शादियां अपने धार्मिक रीति-रिवाज से करते हैं।यद्यपि स्पेशल मेरिज एक्ट 1954 के रुप में उनके लिये एक कानून मौजूद है।

Almost all Hindus still solemnise their marriages through religious customs although there is a civil way out through the Special Marriages Act of 1954. (The Hindustan Times, May 22, 1995)

यह कोई संयोग की बात नहीं। यह दरअसल वही है जो होना चाहिये। शादी-व्याह का संबंध अत्यंत निजी मामलों से है। ऐसें मामलों में हर संप्रदाय सदैव अपने पारिवारिक रीतिरिवाज के अनुसार ही कार्य करता है। इस तरह के मामलों में इसके अतिरिक्त अन्य कोई सूरत संभव नही।

## वास्तविक आवश्यकता- राष्ट्रीय चरित्र

भारत को एक संगठित तथा शांतिपूर्ण व उन्नत राष्ट्र बनाने के लिये असल में जिस चीज़ की आवश्यकता है वह राष्ट्रीय चरित्र है। देश में जितनी भी कमियां है, तथा यहां जो भी बिगाड़ यहां दिखाई देता है उन सबका असल कारण केवल एक है, वह यहां कि स्वतंत्रता के पश्चात् देश के लोगों में "राष्ट्रीय चरित्र निर्माण" न किया जा सका।

राष्ट्रीय मानसिकता व्यक्तिगत मानसिकता की विपरीत है। इसका मतलब यह है कि आदमी व्यक्तिगत हित को महत्व देने के बजाये राष्ट्र के हित को महत्व दे। जहां कहीं दोनों में टकराव हो तो वह व्यक्तिगत हित को त्याग कर राष्ट्र के हित वाले तरीके को अपनाये।

बाहर का कोई देश धन देकर आपको खरीदना चाहे तो अपने देश के प्रति प्रेम की भावना आपको इस से रोक दे। टेक्स न देने में आपको व्यक्तिगत लाभ हो रहा हो। तब भी आप टेक्स दें, क्योंकि उससे राष्ट्र को लाभ होगा। मिलावटी चीज़ों को सप्लाई करने में आपका निजी लाभ बढ़ता हो मगर आप ऐसा न करे क्योंकि ऐसा करने से देश की उन्नति रुक जाती है। व्यक्तिगत शिकायतों के बावजूद आप राष्ट्रीय सम्पत्ति को नुकसान न पहुंचाये तथा अर्थचक्र को रोकने की कोशिश न करे। क्योंकि ऐसा करने में देश का विनाश होगा। चुनाव में यदि आप हार जायें तो दिल से अपनी पराजय स्वीकार कर ले। क्योंकि पराजय को स्वीकार न करने का परिणाम यह होता है कि देश की पूरी राजनीतिक व्यवस्था बिगड़ जाती है। यदि आप उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर है तो अपने आर्थिक लाभ के लिये किसी षड्यंत्रपूर्ण योजना में शामिल न हों क्योंकि ऐसा करने से देश का आर्थिक ढांचा तबाह हो जाता है। यदि आप को एक बार सत्ता मिल जाये तो यह न चाहें कि मैं ही सदैव सत्तासीन रहूं। क्योंकि इस प्रकार

के राजनीतिक स्वार्थ देश के लोकतांत्रिक ढांचे को विनाश तथा बरबादी के कगार तक पहुंचा देते हैं। यदि आप नेता हैं तो अपने चुनावी हितों के लिये एक समुदाय के अंदर दूसरे समुदाय के विरुद्ध नफरत तथा भय की भावनाओं को न उत्पन्न करे। क्योंकि इस से आपका वोट बैंक तो बनेगा लेकिन देश का बैंक दिवालिया हो कर रह जायेगा। इत्यादि।

इसी का नाम सच्ची देश भक्ति है। तथा यही देश को आगे बढ़ाने के लिये आवश्यक है। मगर यही चीज़ आज हमारे देश में मौजूद नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि सारे लोग "देश भक्त" के बजाये "आत्म भक्त" हो गये है। हर एक अपने लाभ के लिये देश के लाभ को भूल गया है। इसी "आत्म भक्ति" ने देश का ऐसा बुरा हाल किया है जिस की हर व्यक्ति आज शिकायत कर रहा है।

देश भक्ति, समान नागरिक संहिता जैसी कार्यवाहियों से कभी नहीं आयेगी, बल्कि लोगों की सोच को रचनात्मक दिशा देने से आयेगी। इस के लिये हमें तमाम साधनों का उपयोग कर लोगों को प्रशिक्षित करना होगा। हमें रचनात्मक विवेक तथा मानसिक जागृति की एक लम्बी व बहुकोणीय मुहिम चलानी पड़ेगी। निसंदेह यह एक कठिन कार्य है परन्तु यह भी सत्य है कि कोई भी दूसरी चीज़ इसका बदल नहीं है।

## शिक्षा का महत्व

भारतीय संविधान के मार्गदर्शक सिद्धांतों के अंतर्गत जो धारायें दर्ज हैं उनमें से एक उसकी धारा 45 है। इस धारा के अनुसार राज्य यह प्रयास करेगा कि संविधान के लागू होने के बाद दस वर्ष की अवधि में वह सारे बच्चों, के लिये निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराये। यहां तक कि वे चौदह वर्ष की आयु तक पहुंच जाये।

The state shall endeavour to provide, within a period of ten years from the commencement of this constitution, for free and compulsory education for all children until they complete the age of fourteen years.

संभवताः निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि यह धारा मार्गदर्शक सिद्धांतों के अंतर्गत लिखित धाराओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। मगर हम देखते हैं कि उसकी यही धारा सबसे अधिक महत्वहीन बनी हुई है। उच्चतम न्यायालय ने कभी इसकी आवश्यकता नहीं समझी कि वह शासन से पूछताछ करे कि दस वर्ष की अवधि गुज़रने के बावजूद इस धारा पर कार्यवाही क्यों नहीं की गई।

शिक्षा का महत्व राष्ट्र निर्माण के लिये इतना अधिक है कि उसके मुकाबले में समान नागरिक संहिता का मामला केवल एक "नानइश्यू" की है सियत रखता है। ऐसी स्थिति में हमारा एकसूत्रीय लक्ष्य केवल यह होना चाहिये कि हम देश के लोगों को शत प्रतिशत शिक्षित बनाये। इसके सिवा जिस चीज़ को भी लक्ष्य बनाया जायेगा वह वास्तविक ध्यान देने योग्य मुद्दे से ध्यान हटाने के समान होगा। और इस प्रकार ध्यान को महत्वपूर्ण से हटाकर महत्वहीन में उलझा देना एक राष्ट्रीय अपराध है न कि राष्ट्र की सेवा।

शिक्षा का संबंध वास्तव में नौकरी से नही है। शिक्षा का वास्तविक महत्व यह है कि वह विवेक का पोषण करती है। वह मनुष्य को सही दिशा में सोचने वाला बना देती है। समाज या राष्ट्र में जितनी भी सकारात्मक तथा लाभदायक घटनायें होती है वह सब उन्हीं लोगों की देन होती हैं जो सही दृष्टिकोण के स्वामी है।

सही दृष्टिकोण व्यक्ति के अंदर दूरदर्शिता उत्पन्न करता है वह आदमी को बताता है कि वह विभिन्नताओं से किस प्रकार निपटे। वह आदमी के अन्दर परिपक्वता उत्पन्न करता है कि वह अपने "माइनस" को "प्लस" में परिवर्तित कर सके। उससे आदमी एक चीज़ तथा दूसरी चीज़ के मध्य अन्तर को जानता है। वह प्रत्यक्ष से गुज़रकर परोक्ष को जान लेता है। सही दृष्टिकोण से ही सही कर्म सम्भव होता है तथा सही कर्म ही किसी व्यक्ति या समुदाय को सफलता के लक्ष्य तक पहुंचाता है।

समाज में एकता तथा परस्पर सामंजस्य का वातावरण बनाने के लिये वास्तविक आवश्यकता यह नहीं है कि लोगों का शादी व्याह का तरीका एक हो बल्कि असल आवश्यकता यह है कि लोग सही दृष्टिकोण के स्वामी हों। सही दृष्टिकोण क्या है यह एक घटना से स्पष्ट होगा:-

स्वामी विवेकानन्द (1863-1902) को एक ईसाई बन्धु ने अपने घर पर आमंत्रित किया। ईसाई ने स्वामीजी को जांचने के लिये यह किया कि अपने अतिथि कक्ष में एक मेज़ पर नीचे ओर ऊपर बहुत सी धार्मिक पुस्तकें रख दी। सबसे नीचे हिन्दुओं की पवित्र पुस्तक रामायण रखी, उसके ऊपर विभिन्न धर्मों की पुस्तकें तथा सबसे ऊपर अपनी धार्मिक पुस्तक बाइबिल। स्वामी विवेकानंद ने जब कमरे में प्रवेश किया तो ईसाई मेज़बान ने किताबों की ओर संकेत करते हुये कहा कि देखिये इसके बारे में आपकी क्या टिप्पणी है। स्वामी जी किताबों के इस क्रम को देख कर मुस्कुराऐ और कहा "फाउन्डेशन" तो बहुत अच्छी है।

स्वामीजी यदि इस मामले को प्रतिष्ठा का मुद्दा बना लेते तो वे बिगड़ जाते। वे कहते कि क्या तुमने मुझे अपमानित करने के लिये यहां बुलाया था। अब दोनों में तकरार शुरू हो जाती। संभव था कि यह तकरार बढ़कर इस नौबत तक पहुंचती कि शांति स्थापित करने के लिये पुलिस को बुलाना पड़ता। लेकिन स्वामी जी ने उसको प्रतिष्ठा का मामला बनाने के बजाये उपेक्षा का मामला बना दिया। इस का परिणाम यह हुआ कि जो मामला दोनों को लड़ाई तक पहुंचाता। वह दोनों के मध्य मुस्कुराहट के आदान-प्रदान पर समाप्त हो गया।

यह सराहनीय घटना किस प्रकार हुई। क्या इस लिये कि स्वामी विवेकानंद तथा उपरोक्त ईसाई का शादी-व्याह का तरीका एक था। स्पष्ट है कि ऐसा नहीं था। क्योंकि उनमें से एक हिन्दू था तथा दूसरा ईसाई, और हिन्दुओं तथा ईसाइयों में शादी व्याह का तरीका एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है।

इसका कारण केवल यह था कि स्वामी विवेकानंद एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी उच्च कोटि की शिक्षा ने उनको अत्यंत विवेकावान बना दिया था। वे जानते थे कि किस तरह किसी घटना को नकारात्मक दिशा देने के बजाये उसको सकारात्मक दिशा दी जा सकती है। वे सोचने की कला जानते थे। वे जीवन के विज्ञान सें परिचित थे। वे जानते थे कि किस तरह विभिन्नता के बावजूद संगठित रहा जा सकता है। इसका रहस्य स्वामीजी के विवेक के जागृत होने में था न कि किसी प्रकार की समान नागरिक संहिता में।

## मुसलमानों से दो शब्द

अंत में मैं मुसलमानों से विनती करूँगा कि वे उच्चतम न्यायालय के वर्तमान निर्णय (1995) के मामले में भूतकाल की उस भूल को न दोहराऐं जो उच्चतम न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय (1985) के मामले में उन से हुई थी। दस काल पहले जब शाहबानो केस पर महामहिम न्यायालय का निर्णय सामने आया तो मुसलमानों ने सारे देश में रोष प्रकट करने तथा प्रदर्शनों का सिलसिला प्रारम्भ कर दिया। उसका सीधा लाभ देश के अतिवादी हिन्दू तत्वों को पहुंचा।

अब पुनः यह तत्व प्रतीक्षा कर रहे हैं कि मुसलमान भडक कर सड़कों पर आजायें ताकि वे मुस्लिम खतरे का हौवा खड़ा करके हिन्दुओं में अपना वोट बैंक बना सके। सुप्रीम कोर्ट का निर्णय अपनी वर्तमान स्थिति में मुसलमानों के लिये कोई खतरा

नहीं। हां यदि मुसलमानों ने एक बार फिर प्रदर्शन का तरीका अपनाया तो निश्चित रूप से वह उनके लिये खतरा बन जायेगा।

यह दुनिया मुकाबले की जगह है। यहां हर एक इस इंतिज़ार में रहता है कि वह दूसरे की कमज़ोरी का लाभ उठाये। प्रतिपक्ष को यह अवसर सदैव उस स्थिति में मिलता है जब कि अरुचिकर परिस्थिति आने पर आप भड़क उठें तथा उतावले होकर कार्यवाही कर बैठें। इसी लिये कुरआन में हुक्म दिया गया है कि-- तुम सब्र करो, जिस तरह हिम्मत वाले पैगम्बरों ने सब्र किया, और उनके लिये जल्दी न करो (अल-अहक़ाफ-35) सब्र का तरीका दूसरे पक्ष से यह अवसर छीन लेना है कि वह आपकी कमज़ोरियों का शोषण कर सके। जबकि बेसब्री का तरीका आपसे ऐसी गल्तियां करवाता है कि आप अत्यंत सरलता पूर्वक दूसरे की छलपूर्ण योजनाओं का शिकार हो जायें।

किसी समुदाय के विरुद्ध साज़िश यद्यपि दूसरे लोग करते हैं मगर व्यवहारिक रूप से षडयंत्र का शिकार होने या न होने का मामला स्वयं उस समुदाय के अपने वश में होता है। इसी हकीकत को समझने में उस समुदाय की सफलता का रहस्य छिपा है जिसके विरुद्ध षडयंत्र किया जाये।

इति

कम्पोज़ :
क्वालिटी इन्टरप्राइस, 198, सी-सेक्टर, शाहपुरा, अरेरा कालोनी, भोपाल – 16